वर्तमान परिदृश्य में न्यायिक सक्रियता के विविध आयामः एक तुलनात्मक अध्ययन

संशोधित शोध संक्षेपिका

डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर विश्वविद्यालय, आगरा में पीएच0डी0 उपाधि के पंजीकरण हेतु प्रस्तुत

(विधि विषय)

शोध पर्यवेक्षकः-

डॉ0 शिति कण्ठ दूबे

एसोसिएट प्रोफेसर

विधि संकाय

आगरा कॉलेज, आगरा

शोधार्थी

लाल सिंह

विधि संकाय

आगरा कॉलेज, आगरा

ोध केन्द्र का नाम - विधि संकाय, आगरा कॉलेज, आगरा

व-र्ा- 2017

घो-णा पत्र

मैं **लाल सिंह** ृोध छात्र विधि संकाय, आगरा कॉलेज, आगरा उत्तर प्रदेश घो-णा करता हूँ कि **:वर्तमान परिदृश्य में न्यायिक सक्रियता के विविध आयामः एक तुलनात्मक अध्ययन**- वि-ाय पर डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर विश्वविद्यालय आगरा सत्र 2014-15 में पीएच0डी0 विधि उपाधि के पंजीकरण हेतु **डॉ0 शिति कण्ठ दूबे** एसोसिएट प्रोफेसर, विधि संकाय, आगरा कॉलेज, आगरा द्वारा मुझे मार्गदर्शित एवं निर्देशित किया जा रहा है। प्रस्तुत संशोधित ृोध संक्षेपिका (त्मअपेमकै लदवचेपे) का मेरे द्वारा मौलिक कार्य किया जा रहा है इस ृोध ृी-र्क पर मेरे द्वारा डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर विश्वविद्यालय आगरा द्वारा निहित सभी मापदण्डों को पूरा किया गया है और इस संशोधित ृोध संक्षेपिका के वि-ाय पर इस विश्वविद्यालय अथवा अन्य संस्थान में कोई अन्य डिग्री या डिप्लोमा प्रदान नहीं किया गया है।

मैं यह भी घो-ाण करता हूँ कि मेरे द्वारा प्रस्तुत संशोधित ृोध संक्षेपिका में कुछ भी बनावटी व गलत नहीं है, पूरी ईमानदारी से सभी ौक्षिक सिद्धान्तों का पालन किया गया है और उपलब्ध साहित्यों से जो भी तथ्य लिये गये हैं उनको मौलिक स्रोतों से कोड किया गया है।

स्थान : आगरा ृोधकर्ता

दिनांक : लाल सिंह

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्री लाल सिंह विधि ृोध छात्र सत्र 2014-15 विधि संकाय, आगरा कॉलेज, आगरा (डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर विश्वविद्यालय आगरा) उत्तर प्रदेश ने अपनी संशोधित ृोध संक्षेपिका **:वर्तमान परिदृश्य में न्यायिक सक्रियता के विविध आयामः एक तुलनात्मक अध्ययन**- वि-ाय पर कार्य मेरे निर्देशन में सम्पन्न किया जा रहा है यह सर्वथा मौलिक कार्य है। इस संशोधित ृोध संक्षेपिका(त्मअपेमकौ लदवचेपे) का कार्य ृोध छात्र द्वारा स्वयं किया जा रहा है।

मुझे ृोध छात्र द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त ृाी-र्क पर पर्यवेक्षक होने पर कोई आपत्ति नहीं है।

प्रतिहस्ताक्षरित विभागाध्यक्ष

ृोध पर्यवेक्षक

डॉ0 पीयू-ा त्यागी
एसोसिएट प्रोफेसर
विधि संकाय
आगरा कॉलेज, आगरा

डॉ0 शिति कण्ठ दूबे
एसोसिएट प्रोफेसर
विधि संकाय
आगरा कॉलेज, आगरा

वि-ाय-सूची

क्र. सं.	नाम	पेज नं.
1	प्रस्तावना	1-2
2	ृोध परिकल्पना एवं प्रबन्ध	2-7
3	उपलब्ध साहित्य की समीक्षा	8-14
4	अध्ययन के उद्देश्य	15
5	अध्याय विन्यास	16
6	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	17-19

वर्तमान परिदृश्य में न्यायिक सक्रियता के विविध आयामः एक तुलनात्मक अध्ययन

प्रस्तावना, भूमिका एवं परिकल्पना

मानव समाज के प्रादुर्भाव के साथ साथ उनका सामाजिक ढांचा भी विकसित होता चला जा रहा है उसके साथ इस समाज को नियन्त्रित व दिशा निर्देशित करने हेतु राजनैतिक ृाक्ति का जन्म व विकास भी हुआ है। यहॉ ध्यान देने वाली बात यह है कि एक सफल रा-ट्र या समाज के लिये उसकी स्वतन्त्र व नि-पक्ष न्यायिक प्रणाली का होना आवश्यक है, परन्तु बढ़ती राजनैतिक ृाक्ति व निरंकुश प्रशासन अपनी सर्वोपरिता की स्थिति का दुरूपयोग करते हैं। राज्य जो इस ृाक्ति का प्रतीक है वह व्यवहारतः स्वेच्छाचारी बनकर अपने मूल्यों व उदेश्यों की अवहेलना करते हैं जिससे अनियमित व वि-ाम हो जाने की स्थिति बन जाती है जहॉ सामान्य जन ने अपने जनप्रतिनिधियों को अपनी सहायता व दिशा निर्देशन के लिये चुना, वहीं जनप्रतिनिधि (सांसद/विधायक) वोट बैंक की तुच्छ राजनीति, स्वार्थवश या अकर्मण्यता के चलते जन सामान्य की समस्याओं का निदान ना कर अपनी स्वेच्छाचारिता के कारण उनके साथ अन्याय करते हैं ऐसी परिस्थिति में यदि जन सामान्य न्याय प्राप्ति के लिये सड़कों पर उतरें और हिंसक व आक्रामक विरोध की स्थिति बने तो वह उस स्वतन्त्र व लोकतंत्रात्मक रा-ट्र की सबसे बडी असफलता होगी इस स्थिति को रोकने के लिये व जन सामान्य के अधिकारों की रक्षा करने के लिये न्यायपालिका ृाासन की स्वेच्छाचारी ृाक्तियों का विरोध करते हुये तथा कार्यपालिका व विधायिका के कार्य क्षेत्र में दखल करते हुये जन सामान्य को न्याय प्राप्त करवाती है यही न्यायिक सक्रियता है। न्यायपालिका की सक्रियता के कारण कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका में सर्वोपरि होने का विवाद उत्पन्न हो चुका है जिसके सम्बन्ध में स्थिति समय-समय पर न्यायपालिका द्वारा दिये गये निर्देशों द्वारा स्प-ट होती रहती है।

ृोध प्रस्थापना-किसी भी स्वतन्त्र, सभ्य व लोकतान्त्रिक देश के ऊर्ध्वगामी विकास के लिये उचित नि-पक्ष व स्वतन्त्र न्यायपालिका का होना नितान्त आवश्यक है जिसके बिना एक सभ्य रा-ट्र की कल्पना नहीं की जा सकती है। यहॉ यह भी स्प-ट कर देना आवश्यक व समीचीन है कि विधायिका अपनी ृाक्ति का प्रयोग न्यायिक सिद्धान्तों के अनुरूप ही करे न कि निरंकुश होकर विरोधाभा-ाी रूप से करें। इस विरोधाभा-ा/टकराव को रोकने के लिये

सभ्य समाज ने एक व्यवस्था अपनायी है जिसमें संविधान को सर्वोपरि रखते हुये राज्य के अधिकारों व कर्तव्यों को सुनिश्चित किया गया है तथा यह भी अभिनिश्चित किया गया है कि सरकार संवैधानिक नियमों के अनुसार ही अपनी ृाक्ति का प्रयोग करें।

एक तरफ जहॉ संविधान ने राज्य की ृाक्ति की सीमाओं को सुनिश्चित करने का प्रयास किया है वहीं दूसरी तरफ उसने न्यायपालिका को पृथक, स्वतन्त्र व नि-पक्ष बनाया है तथा इन दोनों ृाक्तियों को एक दूसरे की पूरक व इनके मध्य संतुलन बनाये रखने का प्रयास किया है किन्तु उदारवादी लोकतान्त्रिक व्यवस्था की अतिृाक्तिशाली राज्य की निरंकुशता से जन सामान्य को बचाने पर भी विशे-ा बल दिया जाने लगा है इस स्थिति में न्यायपालिका की भूमिका उस रक्षक की हो जाती है जो स्वेच्छाचारी राज्य से नागरिक की रक्षा करता है।

न्यायपालिका की रक्षक रूपी भूमिका को और सुदृढ करने के लिये न्यायिक प्रक्रिया की स्वतन्त्रता व नि-पक्षता पर विशे-ा बल दिया जाता है इससे स्प-ट हो जाता है कि स्वतन्त्रता व सक्रिय न्यायपालिका सुदृढ राज्य का आवश्यक पहलू है।

ृोध परिकल्पना एवं प्रबन्ध

ृोध प्रवृति किसी भी ृोध समस्या के निदान का क्रमबद्ध अध्ययन है यह कैसे कोई ृोध होता है, के अध्ययन का विज्ञान है। ृोध से तात्पर्य किसी भी ज्ञान के नव क्रिया कलापों से लिया जाता है तथ्यात्मक रूप से ृोध प्रवृति ृोध तरीकों की विस्तृत रूप रेखा है। ृोध प्रवृति के अन्तर्गत ृोधकर्ता द्वारा ृोध के दौरान अपने किये गये अध्ययन के विभिन्न तरीकों को रेखांकित किया जाता है इस प्रकार यह सामाजिक संघठनात्मक परिप्रेक्ष्य, दार्शनिक कल्पना/धारणा (ेनउचजपवद) तथा सांसकृतिक राजनैतिक व आर्थिक समस्याओं का अवलोकन व अध्ययन है। वर्तमान ृोध सैद्धान्तिक ृोध (क्वबजतपदंस त्मेमंतबी) है जो विधि पुस्तकों, न्यायिक निर्णयों, विधिशास्त्रियों के मत व विभिन्न जर्नलों में प्रकाशित ृोध लेखों के सारगर्भित, विश्ले-णात्मक व विधिक अध्ययनों पर आधारित है।

भारत के परिप्रेक्ष्य मेंः-

भारत में विधि का ृाासन है, भारत की न्यायपालिका स्वतन्त्र व नि-पक्ष है। भारतीय संविधान निर्मातागण एक ऐसा अखिल भारतीय सर्वोच्च अपीलीय न्यायालय बनाने

के लिये दृढ संकल्पित थे जो भारत में आम जनता की स्वाधीनता की रक्षा करते हुये भारतीय लोकतन्त्र का एक मजबूत स्तम्भ बने।

भारतीय सर्वोच्च न्यायालय इस संकल्प को पूर्ण करता है। हमारी समूची न्यायिक व्यवस्था में एक सर्वोच्च न्यायालय है जो भारत के मुख्य न्यायाधीश व अन्य न्यायाधीशों से मिलकर बनता है इसका क्षेत्राधिकार अत्यन्त व्यापक है इसमें दीवानी, फौजदारी, प्रारम्भिक अपीलीय व परामर्शीय सभी प्रकार के मामले आते हैं अतः स्प-ट है कि भारत में संविधान व लोकतन्त्र की रक्षा का कार्य सर्वोच्च न्यायालय का ही है। स्वाधीन भारत में सर्वोच्च न्यायालय का कार्यकाल बहुत गौरवमय रहा है तथा अनु0 32 के अनुसार यह आम जनता के संवैधानिक अधिकारों के संरक्षक व प्रहरी के रूप में भी है।

राज्य की कार्यपालिका व व्यवस्थापिका की बिगडती स्थिति को देखते हुये तथा राज्य की अकर्मण्यता को रोकने के लिये सर्वोच्च न्यायालय ने 80 के दशक के बाद न्यायिक सक्रियतावाद के सिद्धान्त को अपनाया। जब विधायिका और कार्यपालिका के द्वारा अपने कर्तव्यों की अवहेलना की गई तो सर्वोच्च न्यायालय ने अपने परम्परागत क्षेत्र से आगे बढते हुये न्यायिक सक्रियता के आधार पर न्यायालय ने एक रचनात्मक भूमिका की। अभी तक न्यायपालिका के पास केवल नि-ोधात्मक भूमिका थी। भारतीय सर्वोच्च न्यायालय की कार्यविधि के सम्बन्ध में यहॉ कुछ बातों का उल्लेख करना आवश्यक है ये वे बातें हैं जो कार्य विधि को प्रभावित करती हैं।

1. वे वि-ाय जिनका सम्बन्ध संविधान से है या जिसके अन्तर्गत संविधान की व्याख्या का प्रश्न अन्तर्ग्रस्त है अथवा विधि का अभिप्राय स्प-ट करना हो या रा-ट्रपति द्वारा मामला सर्वोच्च न्यायालय को विचार हेतु सौंपा गया हो तो ऐसे उपरोक्त समस्त मामलों की सुनवाई कम से कम 5 न्यायाधीशों की खण्डपीठ के द्वारा होती है।
2. वे मामले जिनमें संविधान की व्याख्या करनी हो या विधि के अभिप्राय को तात्विक रूप से स्प-ट करना हो, ऐसे मामलों की सुनवाई व अपीलें सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष ही होती है।
3. सर्वोच्च न्यायालय के समस्त निर्णय खुले तौर पर दिये जाते हैं।
4. सर्वोच्च न्यायालय के समस्त निर्णय बहुमत के आधार पर होते हैं बहुमत के निर्णय से असहमत न्यायाधीश अपना पृथक निर्णय दे सकते हैं परन्तु किसी भी प्रकार से बहुमत के निर्णय को प्रभावित नहीं कर सकते हैं क्योंकि बहुमत का निर्णय ही मान्य होता है।

श्री दुर्गादास बसु के अनुसार-''यद्यपि हमारा संविधान एक संधि या समझौते के रूप में नहीं है फिर भी संघ तथा राज्यों के बीच व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकारों का विभाजन किया गया है अतः अनुच्छेद 131 संघ तथा राज्यों या विभिन्न राज्यों के मध्य न्याय योग्य विवादों के निर्णय का प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार सर्वोच्च न्यायालय को सौपता है।[1]

---

1. अनु0 131 भारत का संविधान (दुर्गा दास बसु)

अनुच्छेद -129 सर्वोच्च न्यायालय को अभिलेख न्यायालय[2] का स्थान प्रदान करता है

अभिलेख न्यायालय के दो आशय है:-

1. सर्वोच्च न्यायालय के अभिलेख साक्ष्य के रूप में मान्य होते हैं और उन्हें किसी भी न्यायालय में प्रस्तुत किये जाने पर अपनी प्रमाणिकता को प्रश्नगत नहीं किया जाता है।

2. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'न्यायालय की अवमानना के लिये दण्ड की व्यवस्था की जा सकती है।'

अर्थात सर्वोच्च न्यायालय के निर्णयों को अधीनस्थ न्यायालयों के समक्ष पूर्वनिर्णय (प्रिसीडेन्ट) के रूप में रखा जा सकता है और न्यायालय को अपने अवमान के लिये किसी भी व्यक्ति को दण्ड देने की ृाक्ति होती है जिसके सम्बन्ध में न्यायालय की अवमानना के लिये बहुत से वाद हुए हैं।

वस्तुतः अभिलेख न्यायालय के अभिलेखों पर सन्देह नहीं किया जा सकता है यद्यपि स्वयं अभिलेख न्यायालय ही अपने अभिलेख की लिपि सम्बन्धी भूलों में सुधार कर सकता है। इसके अतिरिक्त संसद ने न्यायालय अवमानना अधिनियम, 1971 पारित करके न्यायालय अवमानना की स्थिति को निश्चित कर दिया है। न्यायालय अवमानना के लिये 6 माह का कारावास या 2000/- रूपये अर्थदण्ड या दोनों ही किये जा सकते हैं न्यायाधीशों को भी अपने न्यायालय की अवमानता के लिये दण्डित किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा कलकत्ता उच्च न्यायालय के कार्यरत न्यायमूर्ति सी. एस. कर्नन को न्यायालय की अवमानना का दो-ी पाते हुए छः माह के कारावास के दण्ड का आदेश पारित किया है। ऐसे ही हाल ही में सर्वोच्च न्यायालय के चार वरि-ठतम न्यायाधीशों ने सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश पर प्रेस कॉन्फ्रेंस कर आरोप लगाये हैं जो कि सर्वोच्च न्यायालय के नियमों के विरूद्ध है।

यहॉ स्प-ट करना आवश्यक है कि 44वें संविधान संशोधन, 1978 के अनुसार सर्वोच्च न्यायालय यदि चाहे तो स्वयं उच्च न्यायालयों से मामलों को अपने पास मंगा

सकता है। इस संशोधन से पूर्व उच्चतम न्यायालय ऐसा केवल एटार्नी जनरल के आवेदन पर ही कर सकता था। अब सर्वोच्च न्यायालय ऐसा स्वयं कर सकता है।

<u>न्यायिक सक्रियतावाद का आशयः-</u> न्यायालय द्वारा अपने जटिल कानूनी व्यवस्थाओं से आगे बढकर सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर सामाजिक व आर्थिक न्याय के अनुरूप संविधान या अन्य विधि की रचनात्मक व्याख्या कर जन साधारण के हितों

---

2. अनु0 129 भारत का संविधान (जे0एन0 पाण्डेय)

की रक्षा करना ही न्यायिक सक्रियता से आशयित है। इसके अन्तर्गत यह बात भी सम्मिलित

है कि जन सामान्य के हितों के अनुरूप ृाासन की स्वेच्छाचारिता पर रोक लगाना व ृाासन को निर्देश देना भी न्यायालय का दायित्व है। सर्वोच्च न्यायालय ने विगत व-र्ाो से देश में विद्यमान सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों को अपना लिया है परम्परागत रूप से यह सोचा जाता रहा है कि न्यायपालिका को राजव्यवस्था में मात्र नि-ोधात्मक भूमिका ही प्राप्त है परन्तु न्यायिक सक्रियतावाद की अवधारणा के आधार पर न्यायपालिका की भूमिका सकारात्मक हो जाती है। इसी आधार पर कुछ विद्वान न्यायिक सक्रियतावाद के स्थान पर न्यायिक रचनात्मकता या न्यायपालिका की रचनात्मक भूमिका रूपी ृाब्दों का प्रयोग करते हैं।

<u>लोकहित वाद</u>

न्यायपालिका द्वारा निर्धन, पिछडे, दलित, निरक्षर एवं अक्षम लोगों को ृाीघ्र न्याय दिलाने के उददेश्य के अपने ऊपर लगे प्रतिबन्ध जिसमें वह तभी निर्णय करती थी जब वादी, प्रतिवादी पक्ष न्यायालय में उपस्थित होकर न्याय की मांग करते थे, को हटा दिया गया इसके साथ ही न्यायिक प्रक्रिया को लोकहित के मामले में सरल एवं सुगम बना दिया है। लोकहित वाद में जीवन की मूलभूत आवश्यकतायें ृाो-ाण, शिक्षा, पर्यावरण, बालश्रम, स्त्रियों का ृाो-ाण आदि वि-ायों पर न्यायालय को किसी भी व्यक्ति या संस्था द्वारा मात्र सूचित करने पर न्यायालय स्वयं उसकी जॉच कराकर या वस्तुस्थिति को देखकर जनहित में निर्णय देता है। इस प्रकार के वाद लोकहित वाद कहलाते हैं। संवैधानिक व्यवस्था के अन्तर्गत यह उच्च न्यायालय (अनु0 226) अथवा उच्चतम न्यायालय (अनु0 32) में प्रस्तुत किये जा सकते हैं। लोकहित वाद को 1980 के उत्तरार्द्ध में न्यायमूर्ति पी.एन. भवगती तथा कृ-णा अय्यर ने प्रारम्भ किया जिसे बैंकटचलैया, जे0एस0 वर्मा, कुलदीप सिंह

आदि न्यायाधीशों ने आगे बढाया जो अद्यतन अनवरत जारी है तथा न्यायपालिका द्वारा अपनाई गई इस प्रक्रिया से अब तक अनेक समस्याओं का समाधान हो चुका है और आज भी अनवरत रूप से जारी है।

न्यायिक सक्रियता का उदय और विकास

न्यायिक सक्रियता का उदभव न्यायिक पुनर्विलोकन से हुआ है लेकिन इसकी अवधारणा का अभ्युदय 1893 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति सैय्यद महमूद के अल्पमत के निर्णय से ही ुरू हो गया था।[3] भारतीय संविधान द्वारा भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था की

---

3. बालकृ-ण, रिफ0 टू द आर्टीकल व्हेन सीड फॉर द ज्यूडिशियल एक्टिविज्म वाज सोड द हिन्दुस्तान टाइम्स न्यू देहली दिनांक 1/4/1996 पेज-9

स्थापना की गई है तथा भारत संविधानात्मक ाासन में विश्वास करता है। संविधानवादी ाासन की मूल मान्यता यह है कि ाासन को मर्यादित ाक्तियॉ ही प्राप्त होनी चाहिये। इसी कारण भारतीय संविधान में न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यवस्था की गई है। इसके आधार पर न्यायपालिका ऐसे किसी भी कानून को अबैध घोि-त कर सकती है, जो संविधान का उल्लंघन करता हो। कालान्तर में न्यायपालिका ने ये अनुभव किया कि उसे यह ाक्ति भी प्राप्त होनी चाहिये कि यदि विधायिका तथा कार्यपालिका अकर्मण्यता के कारण अपने कर्तव्यों की अनदेखी करे अथवा वह मनमाना आचरण करने की प्रवृति को अपनाये तो न्यायपालिका उसे कर्तव्यपालन के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश दे अथवा मनमाना आचरण करने की स्थिति में उसे ऐसा करने से रोक दे। न्यायिक सक्रियता, न्यायिक पुनर्विलोकन से आगे का एक चरण है, एक ऐसा चरण जिसे व्यवस्था में निहित गतिहीनता, ाासन की कमजोरियों एवं दो-ों तथा बदलती हुई परिस्थतियों ने जन्म दिया है। न्यायिक सक्रियता की स्थिति को न्यायपालिका द्वारा उसी देश में अपनाया जा सकता है जिस देश में न्यायिक पुनर्विलोकन की व्यवस्था है क्योंकि न्यायिक सक्रियता न्यायिक पुनर्विलोकन की ाक्ति का ही विस्तृत रूप है पिछले पॉच दशक में अमेरिकी न्यायपालिका ने भी कुछ सीमा तक न्यायिक सक्रियता की स्थिति को अपना लिया है यद्यपि वहॉ के संविधान में न्यायिक पुनर्विलोकन का उल्लेख नहीं किया गया है। न्यायिक सक्रियतावाद के विकास ने लोगों के विधिक तथा संवैधानिक अधिकारों को स्प-ट करने के लिये मार्ग दिखाया है जो आज भी जारी है।

प्रारम्भ में न्यायिक सक्रियतावाद को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया था। सर्वोच्च न्यायालय से उच्च न्यायालयों को प्रेरणा प्राप्त हुई और उनके द्वारा भी न्यायिक सक्रियतावाद को अपना लिया गया है।

जनहित अभियोगों को मान्यताः-

न्यायपालिका ने जनहितकारी वादों को मान्यता दी है। परम्परागत धारणा यह रही है कि न्यायालय से न्याय पाने का हक उसी व्यक्ति को है जिसके मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता है किन्तु न्यायिक सक्रियता के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय ने आंग्ल विधि के नियम को बदल कर यह व्यवस्था की है कि कोई भी व्यक्ति किसी ऐसे समूह या वर्ग की ओर से मुकदमा दायर कर सकता है जिसे उसके कानूनी या संवैधानिक अधिकारों से वंचित कर दिया हो। सर्वोच्च न्यायालय ने यह स्प-ट कर दिया कि गरीब, अक्षम, या सामाजिक-आर्थिक दृ-टि से कमजोर लोगों के मामले में आम जनता का कोई भी व्यक्ति न्यायालय के समक्ष वाद ला सकता है।

भारत में न्यायालय द्वारा विधायिका के क्षेत्र में तो गोलकनाथ वाद (1967) से प्रवेश कर लिया था जिसमें कहा था कि संसद मूल अधिकारों में संशोधन कर सकती है जिसे न्यायालय द्वारा अपने ही केशवानन्द भारतीय वाद (1973) में अपने उपरोक्त निर्णय को उलट दिया और कहा कि संसद संशोधन तो कर सकती है लेकिन संविधान की आधारभूत संरचना में संशोधन नहीं कर सकती है जबकि सही अर्थों में लोकहित वाद की कार्यवाही की शुरूआत बिहार जेल में विचाराधीन बंदी रखे गये कैदियों से हुई। अनुच्छेद 32 के अन्तर्गत उनके मामलों को सर्वोच्च न्यायालय में उठाया। बिहार के इन जेलों में सैकडों विचाराधीन कैदी किसी अदालती कार्यवाही के बिना ही ब-र्ो से निरूद्ध थे इनकी ओर से न तो कोई जमानत देने वाला था न ही कोई वकील था। अतएव जनहित में सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि बिना कारण किसी को जेल में बन्दी न रखा जावे।

जनहित अभियोगों के अन्तर्गत सर्वोच्च न्यायालय ने जिन वादों की सुनवाई की उनमें कुछ प्रमुख है, गोलकनाथ वाद[4], केशवानन्द भारती वाद[5], इन्दिरा साहनी वाद[6], हुसैन आरा खातून वाद[7], बन्धुआ मुक्ति मोर्चा वाद[8], एम0सी0 मेहता वाद[9], पीपुल्स फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स वाद[10] ,न्यायमूर्ति सी.एस. कर्नन अवमानना वाद[11] जिसमें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा स्वतः संज्ञान लेकर न्यायालय की अवमानना के लिये न्यायमूर्ति सी.एस. कर्नन को तीन साल के कारावास का दण्डादेश दिया है।

4. ए0आई0आर0 1967 एस0सी0 1643
5. ए0आई0आर0 1973 एस0सी0 1461
6. ए0आई0आर0 1993 एस0सी0 477
7. ए0आई0आर0 1979 एस0सी0 1369
8. ए0आई0आर0 1984 एस0सी0 802
9. ए0आई0आर0 1987 एस0सी0 965
10.ए0आई0आर0 1982 एस0सी0 1473
11. (2017) 7 एस0सी0सी0 1

उपलब्ध साहित्य की समीक्षा

प्रत्येक न्यायिक एवं राजनैतिक समस्या का देश, काल एवं परिस्थितियों से घनि-ठ तथा प्रत्यक्ष सबंध होता है अतः इस दृ-टि से पूर्व अध्ययनों से संबंधित साहित्य की समीक्षा करना ही नही होता, अपितु ृोध की अनिवार्य आवश्यकता होती है।

इस प्रकार यहॉ पर प्रमुख जरनल्स तथा विभिन्न लेखों के कथन विशे-ा रूप से उल्लेखनीय है–

1. **उपेन्द्र बक्शी**, करेज क्राफ्ट एण्ड कॉण्टेशन - द इण्डियन सुप्रीम कोर्ट इन द एटीज, बॉम्बे 1985 पेज 10 - विख्यात भारतीय विधिवेत्ता उपेन्द्र बक्शी ने न्यायिक सक्रियता को परिभा-ित करते हुए लिखा है कि न्यायिक सक्रियता न्यायिक ृाक्तियों के प्रयोग का वह माध्यम है जो ृाक्तियों के मौलिक पुनः संहिताकरण के सम्बन्ध में राज्य की संस्थाओं पर प्रभावी होता है।

2. **एस0पी0 साठे**, ज्यूडिशियल एक्टिविज्मः द इण्डियन एक्सपीरिएंस - वाशिंगटन यूनिवर्सिटी जरनल ऑफ लॉ एण्ड पॉलिसी वॉल्यूम 6, 2001 न्यायिक सक्रियता भारत में विवाद का वि-ाय है न्यायालय संविधियों को यांत्रिक तरीके से निर्वचित नहीं कर सकती है

जिससे संविधान का महत्व कम हो जाये। संविधान के मामले में न्यायालय द्वारा संविधान की सुसंगता को बदलते सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिदृश्य में धारित किया जाना चाहिए।

3. **उपेन्द्र बक्शी**, टेकिंग सफरिंग सीरियसलीः सोशल एक्शन लिटिगेशन इन सुप्रीम कोर्ट ऑफ इण्डिया, इन द जजेज ऑफ ज्यूडिशियल पावर्स 1985- न्यायालय न्यायिक सक्रियता का प्रयोग अपनी न्यायिक छवि को मजबूत करने तथा राजकीय अंगों पर अपनी राजनैतिक ृाक्तियों को बढाने के रूप में प्रयोग करते हैं।

4. **ल्याकर अली**, जस्टिस ज्यूडिशियरी एण्ड ज्यूडिशियल एक्टिविज्म - लीगल व्यूज एण्ड न्यूज, न्यू देहली 1998 पेज 26- व-र्ा 1940-50 के मध्य परिस्थितियॉं न्यायाधीशों को जमींदारों के पक्ष में मजबूर करती थी तथा वह न्यायपालिका को प्रगतिशील नहीं होने के लिये भी मजबूर करती थीं।

5. **रघुल सुधीश**, इज ज्यूडिशियरी रूलिंग इण्डिया? ऑर जस्ट फिलिंग द गैप? - फर्स्ट पास्ट सण्डे 13 अगस्त 2017 सुप्रीम कोर्ट द्वारा 122 2जी स्पैक्ट्रम लाइसेंस को निरस्त करना यह भय व्यक्त करता है कि न्यायपालिका भारत में ृाासन कर रही है। वह यह भी उदगार व्यक्त करते हैं कि न्यायाधीशों को निर्वचन की प्रक्रिया का पालन करना चाहिए न कि न्यायिक बेंचों से विधायन करना चाहिए।

6. **जी0बी0 रेड्डी**, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डिया, द हिन्दू 9/10/2001 न्यायिक सक्रियता अफीम नहीं है किन्तु यह सर्वव्यापी ृाक्ति है जो सर्वत्र विद्यमान है।

7. **अर्चा वशि-ठ**, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डिया, लीगल ब्लॉक जरनल 2017, स्वतंत्र भारतीय न्यायपालिका लोगों के केवल मौलिक अधिकारों की ही रक्षा नही करती बल्कि संविधान की सर्वोच्चता को भी बनाये रखती है जिससे लोगों में संविधान द्वारा प्रदत्त राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक न्याय के प्रति विश्वास बना रहे।

8. **रश्मि बी0**, न्यायिक सक्रियता का अधिकार क्षेत्र पर निबन्ध- (ऐसे इन हिन्दी अ वेब प्लेटफॉर्म) हमारा देश एक विस्तृत रूप से लिखित संविधान द्वारा ृाासित है। इस संविधान में ृाासन के तीनों अंगों कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के बीच कर्तव्य तथा अधिकारों के विभाजन और परस्पर अनुशासन की व्यवस्था भी सूत्रबद्ध की गयी है इसलिये दूसरे पडोसी देशों के विपरीत हमारे यहॉं उनके बीच किसी विस्फोटक टकराव की गुंजाइश काफी कम है।

9. **ऐश्वर्या तलवार**, एमिटी यूनिवर्सिटीः सेपरेशन ऑफ पॉवर एण्ड ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डिया, एकेडिमिक 13/11/2015- पृथक्करण का सिद्धान्त सच्चे अर्थों

में बहुत ही कठोर है इसलिये इसे विश्व के ज्यादातर देशों में स्वीकार नहीं किया गया है और न्यायिक सक्रियता का अर्थ सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के पास ही ृाक्तियों का होना हैं।

10. **प्राची अग्रवाल**, सी0एन0एल0यू0 पटना- ज्यूडिशियल एक्टिविज्म एण्ड कॉन्स्टीट्यूशनल चैलेन्जेज इन इण्डिया एकेडमिक 13/11/2014- न्यायिक सक्रियता की व्याख्या व्यक्तिगत अथवा राजनैतिक विचार की अपेक्षा प्रचलित विधि के ऊपर न्यायिक निर्णयों से उत्पन्न होती है।

11. **दृ-टि मैगनीज कक्षा कार्यक्रम लेख**- ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डिया 11/11/2013- न्यायिक सक्रियता का अर्थ सर्वोच्च न्यायालय और अवर न्यायालय द्वारा न्यायिक प्रतिबन्ध के वजाय प्राधिकारी को कार्य करने के लिये विवश करना है और कभी-कभी सरकार और प्रशासन के माध्यम से सरकारी नीतियॉ बनाना है।

12. **नेमी मोहिता** ने अपने आर्टीकल ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डियाः ओरिजिन्स, मीनिंग्स, कॉजेज एण्ड कोर्स में भारत में न्यायिक सक्रियता, इसके उद्भव, अर्थ तथा कारणों का वर्णन किया है।

13. **पीयू-ा पाण्डेय** द्वारा न्यायाधीश आर0एस0 सोढी से बातचीत ऑपीनियन न्यूज इन हिन्दी अमर उजाला 02/7/2013 को राजनेताओं को दो-ाी करार दिये जाने पर उनकी सदस्यता खत्म करने के फैसले के कारगर होने की स्थिति पर बात की है। जन प्रतिनिधित्व अधिनियम पर चर्चा की है इसलिये यह न्यायिक अतिसक्रियतावाद नहीं है।

14. न्यायिक सक्रियतावाद विकीपीडिया क्रिएटिव कॉमन्स एट्रीब्यूशन 2/2/2017- न्यायिक सक्रियता का समर्थन एक सीमित सीमा तक ही किया जा सकता है इसके विरोध के स्वर भी कार्यपालिका तथा विधायिका में सुने जा सकते हैं।

15. **लिपिका ृार्मा**, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डियाः मीनिंग एण्ड इम्प्लीकेशन, अकेडमिया में भारत में न्यायिक सक्रियता के मीनिंग तथा इम्प्लीकेशन के बारे में बताया है।

16. **ह-र्वर्धन सिंह जुगतवत**, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डिया- अ लिटिल डन एण्ड वेस्ट अनडन इन्टरनेशनल जरनल ऑफ लीगल इनसाइट वॉल्यूम-1- भारतीय संविधान द्वारा विधि को लागू करने के लिए सर्वाच्च न्यायालय के लिये तीन महत्वपूर्ण भूमिका निर्धारित है- 1. किसी न्यायिक अस्प-टता का समाधान करने के लिये अथवा संविधान की व्याख्या करने के लिये सर्वोच्च न्यायालय की भूमिका रखी गयी है। 2. मौलिक अधिकारों का रक्षक। 3. अवर न्यायालय के विवादों का अपील के माध्यम से समाधान करना।

17. **महाजन नियती**, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म फॉर इनवायरमेंट प्रोटेक्शन इन इण्डियाः इन्टरनेशनल रिसर्च जरनल ऑफ सोशल साइंस वॉल्यूम-4(4) 7-14 अप्रैल 2015 ज्यूडिशियल एक्टिविज्म को भोपाल गैस त्रासदी के वाद द्वारा बताया गया है तथा लोकहितवाद के सम्बन्ध में लिखा है कि न्यायिक सक्रियता लोकहितवाद का ही परिणाम है जिसे एम0सी0 मेहता वाद द्वारा प्यावरण के संरक्षण के महत्व को बताया है।

18. **डॉ0 श्रीगोरी कोसुरी**, सोशल एक्टिविज्म एण्ड ज्यूडिशियल एक्टिविज्मः ग्लोबल रिसर्च एनालाइसिस वॉल्यूम -1 सितम्बर 2012, सर्वोच्च न्यायालय द्वारा समाज हित में नई सोच के साथ नीति निदेशक तत्वों को ध्यान में रखते हुए मौलिक अधिकारों का निर्वचन करना ही न्यायिक सक्रियता है।

19. **मूल चन्द ृार्मा एण्ड जॉर्ज एच0 गडवॉइस**, :लॉ स्टूडेन्ट इवॉल्यूट द सुप्रीम कोर्ट- अ केस ऑफ इन्हेन्समेन्ट- जरनल ऑफ द इण्डियन लॉ इन्स्टीट्यूट वॉल्यूम 31, 1989 पेज 1-46 में दोनों प्रोफेसरो नें बताया है कि दिल्ली विश्वविद्यालय के 85 प्रतिशत विधि छात्र संसद की अपेक्षा सर्वोच्च न्यायालय में विश्वास करते है और उन्हें सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अपनायी गयी लोकहितवाद तथा न्यायिक सक्रियता की प्रक्रिया पसन्द है।

20. **श्री वी.एन. ुक्ल ने अपनी पुस्तक कॉस्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया** में न्यायिक सक्रियता के विभिन्न आयामों का वर्णन करते हुये न्यायिक निर्णयों की मूल बातों को समाहित किया है।

21. **पूर्व न्यायाधीश श्री गुमानमल लोढ़ा ने अपनी पुस्तक न्यायिक क्रान्ति के बदलते आयाम** राजस्थान विधि प्रति-ठान यूनिक ट्रेडर्स, चौड़ा रास्ता जयपुर 1986 में जन साधारण को समुचित व अविलम्ब एवं सस्ता न्याय उपलब्ध कराने के विभिन्न तरीकों से अवगत कराया है।

22. **श्री डी.डी. बशु ने अपनी पुस्तक कमेन्ट्री ऑन द कॉस्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया** में न्यायिक सक्रियता तथा अन्य बिन्दुओं से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत चर्चा की है।

23. **श्रीमती ऊ-ा सक्सैना ने अपनी पुस्तक इण्डियन लीगल हिस्ट्री**, न्यू बिल्डिंग अमीनाबाद लखनऊ 1969 में सर्वोच्च न्यायालय को न्याय की अंतिम ृाक्ति माना है तथा न्यायिक सक्रियता के लिये उसे सर्वोच्च ृाक्ति प्रदान की है।

24. **गोल्ड मेडलिस्ट एस.एल. सीकरी ने अपनी पुस्तक ए. कॉस्ट्यिूशलन हिस्ट्री ऑफ इण्डिया**, दयानन्द एंग्लो वैदिक कालेज अमृतसर 1967 में बताया है कि

भारत में सर्व प्रथम 1935 में फैडरल कोर्ट की स्थापना हुई तथा बाद में इसे ही न्याय की सर्वोच्च ृाक्ति सर्वोच्च न्यायालय नाम दिया गया तथा न्याय की सर्वोच्च ृाक्ति प्रदान की गयी।

25. **विजयानन पी.पी. ने अपनी पुस्तक डिटेल ऑफ रिजर्वेशन पॉलिसी एण्ड जूडिशियल एक्टविज्म**, ज्ञान बुक्स 2005 में भारत में आरक्षण की रूप रेखा व न्यायिक सक्रियता के बारे में बताया है।

26. **श्री दुर्गादास बसु के अनुसार**-''यद्यपि हमारा संविधान एक संधि या समझौते के रूप में नहीं है फिर भी संघ तथा राज्यों के बीच व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकारों का विभाजन किया गया है अतः अनुच्छेद 131 संघ तथा राज्यों या विभिन्न राज्यों के मध्य न्याय योग्य विवादों के निर्णय का प्रारम्भिक क्षेत्राधिकार सर्वोच्च न्यायालय को सौपता है।

<u>न्यायिक सक्रियता से विधायिका तथा सर्वोच्च न्यायालय के मध्य विवाद एवं सर्वोच्चता की स्थितिः-</u>

अगर ये कहें कि विधायिका(संसद) और सर्वोच्च न्यायालय के मध्य सम्बन्धों की स्थिति सदा एक समान रही है यह कहना सही नहीं होगा। संविधान के निर्माण के बाद ही संसद और उच्चतम न्यायालय के सम्बन्धों में तनाव देखा जा सकता है जैसा कि 1951 में पं0 जवाहरलाल नेहरू के प्रधानमन्त्रित्व काल में सर्वोच्च न्यायालय की ृाक्तियों को कम करने का प्रयास किया गया। संविधान के प्रथम संशोधन द्वारा विभिन्न राज्यों द्वारा पारित भूमि सुधार और जमींदारी उन्मूलन अधिनियम का मान्यकरण किया गया। संविधान में एक नई अनुसूची(9वीं) जोडकर इन अधिनियमों की एक सूची दे दी गई और सम्पत्ति के अधिकार सम्बन्धी अनुच्छेद-31 में दो नये अनुच्छेद-31(क) व 31(ख) बढ़ा दिये गये। 9वीं अनसूची इस दृ-ि से महत्वपूर्ण थी कि इसमें ृाामिल कानूनों को न्यायालय के पुनर्विलोकन क्षेत्राधिकार से बाहर रखा गया और इस पर न्यायालय को भी सुनवाई करने का अधिकार नहीं था।[12]

इस प्रकार 1951 में ही सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति या भूमिका को सीमित करने का प्रयत्न किया गया, लेकिन उस समय इस स्थिति के बारे में संसद और सर्वोच्च न्यायालय के मध्य मतभेद की स्थिति नहीं थी। यहॉ पर एक तथ्य यह भी है कि उस

समय पं0 जवाहरलाल नेहरू देश के एक छत्र नेता थे उनका निर्णय सर्वमान्य था तथा कोई भी नेता या न्यायाधीश उनके सामने बोलने की हिम्मत नहीं कर सकता था इसलिये उस काम में संसद व न्यायपालिका के मध्य मतभेद की स्थिति नहीं देखी गई।संविधान लागू किये जाने के बाद से ही यह समझा जाता था कि यद्यपि मौलिक अधिकार संविधान की एक महत्वपूर्ण व्यवस्था है लेकिन संविधान की अन्य व्यवस्थाओं के समान ही संसद मौलिक अधिकारों में भी परिवर्तन कर सकती है। 1951 में ृांकरी प्रसाद बनाम भारत संघ[13] तथा

1965 में संविधान में 17वें संशोधन पर निर्णय देते हुये सर्वोच्च न्यायालय द्वारा इस स्थिति को स्वीकार किया गया था।

---

12. प्रथम संविधान संशोधन अधिनियम 1951

13. ए0आई0आर0 1951 एस0सी0 458

लेकिन 17 फरवरी 1967 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा 'गोलकनाथ वाद'[14] में जो निर्णय दिया गया, उससे स्थिति परिवर्तित हो गई। इस निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने ही पुराने निर्णय को अस्वीकार करते हुये कहा कि अनुच्छेद 13(2) में प्रयुक्त विधि ृाब्द के अन्तर्गत सभी प्रकार की विधियॉ आती है अतएव संविधान संशोधन द्वारा यदि मूल अधिकारों का अतिक्रमण होता है तो ऐसे संशोधन को असंवैधानिक घोि-त किया जा सकता है।

गोलकनाथ वाद में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये इस निर्णय की देश भर में व्यापक प्रतिक्रिया हुई। राजनीतिज्ञों और देश के विद्वान वर्ग ने यह कहा कि इस निर्णय के आधार पर सर्वोच्च न्यायालय वह स्थिति प्राप्त करने की कोशिश कर रहा है जो कि संविधान निर्माता उसे नहीं देना चाहते थे। वास्तव में यह तो एक राजनीतिक निर्णय था जिसने न्यायपालिका और संसद के बीच अत्यन्त अप्रिय और विवादपूर्ण स्थिति को जन्म दिया। इसके अतिरिक्त बदलती हुई परिस्थियों के अनुरूप आर्थिक और सामाजिक प्रगति की दिशा में आगे बढने के लिये मौलिक अधिकारों में परिवर्तन करने की आवश्यकता उत्पन्न हो सकती है और यदि ऐसी स्थिति में मौलिक अधिकारों को संशोधित नहीं किया

जाता है तो वह भारतीय प्रजातन्त्र और मूल अधिकारों के लिये अत्यन्त घातक सिद्ध हो सकती है। यदि संसद को मौलिक अधिकारों में परिवर्तन की ृाक्ति नहीं दी जाती तो संसद को निर्देशक तत्वों को, जो कि निर्धारित लक्ष्य है, कार्यक्रम में परिणित नहीं कर सकती है। अतः संविधान में इस प्रकार के संशोधन के प्रस्ताव पर विचार किया जाने लगा, जिससे गोलकनाथ वाद में दिया गया निर्णय रद्द हो सके। इस बात में जरा भी सन्देह नहीं है कि संविधान में किया गया 24वां संशोधन गोलकनाथ वाद के निर्णय के प्रभाव को कम करने के लिये किया गया था। इसके बाद मौलिक अधिकारों को सीमित करने के लिये संविधान में 25वें और 29वें संशोधन भी किये गये।

1971 व 72 के व-र्ाों में संविधान में जो 24वां, 25वां, 26वां, 29वां संशोधन किये गये, उन्हें सितम्बर 1972 में सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी गई। प्रधान न्यायाधीश श्री सीकरी की अध्यक्षता में 14 न्यायाधीशें की पूर्ण पीठ द्वारा चुनौती याचिका (केशवानन्द भारती केस)[15] पर विचार किया गया। 23 अप्रैल 1973 को सर्वोच्च न्यायालय ने अपना ऐतिहासिक निर्णय दिया। इस निर्णय में 1967 का गोलकनाथ बनाम पंजाब सरकार सम्बन्धी निर्णय रद्द कर दिया गया।

---

14. ए0आई0आर0 1968 एस0सी0 1643

15. ए0आई0आर0 1973 एस0सी0 1461

इसी प्रकार एक विकट स्थिति 1975 में उत्पन्न हुई जब श्रीमती इन्दिरा गॉधी के प्रधानमंत्रित्व काल में श्रीमती इन्दिरा गॉधी ने आन्तरिक आपातकाल घोि-त करते हुये भारतीय संविधान का उल्लंघन करने का प्रयास किया। विभिन्न दलों के नेताओं पर अत्याचार किये गये, उन्हें जेलों में बन्द कर दिया गया। 42वें संशोधन (1976) के आधार पर यह निश्चित किया गया कि संसद की संविधान में संशोधन करने की ृाक्ति की कोई सीमा नहीं है और किसी भी संवैधानिक संशोधन को इसके अतिरिक्त अन्य किसी आधार पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती, कि इसमें अनुच्छेद 368 द्वारा बतलाई गई प्रक्रिया को नहीं अपनाया गया है। इसके साथ निर्देशक तत्वों को मौलिक अधिकारों पर वरीयता की स्थिति प्रदान की तथा क्रियान्वयन के लिये बनाये गये किसी भी प्रावधान को इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि ये प्रावधान संविधान में दिये गये किसी अधिकार को सीमित या समाप्त करते हैं। इस तरह 1976 के संधोशन द्वारा संसद को मूल अधिकारों के स्थगन के सम्बन्ध में विभिन्न अधिकार दिये गये और इस प्रकार की

व्यवस्था की गई कि सर्वोच्च न्यायालय भी इसमें कोई हस्तक्षेप न कर सके। इसी प्रकार कुछ विवाद हाल ही में चले हैं जो कि संसद और उच्चतम न्यायालय की सर्वोच्चता के प्रश्न को प्रकट करते हैं जिनमें कुछ प्रमुख वाद इस प्रकार हैं दिल्ली में भूमि सीलिंग वाद, 2जी स्पैक्ट्रम वाद, कॉमनवैल्थ घोटाला वाद, नोएडा भूमि अधिग्रहण वाद व स्कोरा वाद (जिसमें 99वें संविधान संशोधन अधिनियम द्वारा लागू एन0जे0ए0सी0 प्रक्रिया को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा असंवैधानिक घोि-त कर दिया गया था) तथा सायरा वानों वाद (जिसमें तिहरा तलाक को गैर कानूनी बना दिया गया है) हैं। सर्वोच्च न्यायालय तथा विधायिका के बीच सर्वोच्चता की स्थिति विवादित रही है और यह प्रश्न कि सर्वोच्च कौन है, आज भी विवादित है।

यही वह उभरते हुये प्रश्न है जिन्होने ृोधार्थी के ृोध की जिज्ञाशा उत्पन्न की है भारतीय संविधान के अन्तर्गत यदि संसद राज्य व नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करने वाली संस्था है तो न्यायपालिका इस सुरक्षा पर प्रहरी का कार्य करती है, कि क्या सुरक्षा सभी को समान रूप से प्राप्त हो रही है या नही और क्या संसद अपने दायित्वों का भली भॉति निर्वहन कर रही है अथवा नही और इधर सर्वोच्च न्यायालय भी क्या अपने दायित्वों का भली प्रकार से पालन कर रहा है और अपने आपको संविधान के दायरे में रखते हुये कार्य करने का प्रयास कर रहा है अथवा वह कहीं इससें अधिक स्थिति प्राप्त करने की चे-ठा कर रहा है। यहॉ ृोधार्थी की जिज्ञाशा यह भी जानने की है कि क्या हमारी संसद **ब्रिटेन** की तरह सर्वोंच्च होने का प्रयास कर रही है या सर्वोच्च न्यायालय **अमेरिका** की भॉति कहीं व्यवस्थापिका के तीसरे अंग की भूमिका निभाने का प्रयास तो नहीं कर रहा है।

अध्ययन के उद्देश्य

प्रस्तुत ृोध अध्ययन निम्नलिखित उदेश्यों की पूर्ति व प्राप्ति के लिये सम्पादित किया जा रहा है।

1. भारतीय संविधान के अनुसार न्यायपालिका व विधायिका की वर्तमान स्थिति का आकलन व अवलोकन करना है।
2. न्यायिक सक्रियता की आवश्यकता एवं कारण।
3. भारतीय न्याय व्यवस्था में न्यायिक सक्रियता का प्रारम्भ कब और कैसे हुआ था।
4. न्यायिक सक्रियता के प्रकार
5. न्यायिक सक्रियता एवं मानवाधिकारों का विधिाास्त्र
6. न्यायिक सक्रियता एवं लोकहित वाद

7. भारतीय न्याय व्यवस्था में न्यायिक सक्रियता का अर्थ तथा वर्तमान स्थिति का अध्ययन।
8. न्यायिक सक्रियता के फलस्वरूप दिये गये न्यायिक निर्णयों का अध्ययन तथा जन साधारण, राजनैतिक ृाक्ति तथा संसदीय व्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन।
9. न्यायिक सक्रियता के कारण विधायिका व न्यायपालिका के मध्य वर्चस्व सम्बन्धी तनाव व इसकी वर्तमान दशा का अवलोकन।

प्रस्तुत ृोध संक्षेपिका (लदवचेपे) में उल्लिखित उपर्युक्त उदेश्यों के अध्ययन से न्यायिक सक्रियता के वि-ाय में सारगर्भित तथ्यों पर पहुँचना ही ृोधकर्ता का मूल उद्देश्य है।

<u>अध्याय विन्यासः-प्रस्तुत ृोध प्रबन्ध संभावित (ज्मदजंजपअम) कुल आठ अध्यायों में विभाजित है जो निम्न प्रकार हैः-</u>

1. परिचयात्मक
   (क) ृोध क्षेत्र
   (ख) ृोध उदेश्य
   (ग)उपलब्ध साहित्य की समीक्षा
   (घ) ृोध प्रवृत्ति
2. भारतीय संविधान में संसद व सर्वोच्च न्यायालय की स्थिति का अवलोकन
3. न्यायिक सक्रियता का अर्थ, उदय व विकास
4. न्यायिक सक्रियता व लोकहित वाद की स्थिति
5. प्राण व दैहिक स्वतन्त्रता के संरक्षण के सन्दर्भ में न्यायिक सक्रियता
6. भारतीय संविधान में संसद एवं न्यायपालिकाः एक विविध विवेचन

7. न्यायिक सक्रियता, संसद एवं न्यायपालिका के मध्य सम्बन्धों का विवेचन व विश्ले-ाण
8. न्यायिक अवमाननाः न्यायाधीशों के परिप्रेक्ष्य में
9. ृोध नि-क-र्ा।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. **उपेन्द्र बक्शी**, करेज क्राफ्ट एण्ड कॉण्टेशन - द इण्डियन सुप्रीम कोर्ट इन द एटीज, बॉम्बे 1985 पेज 10

2. **एस0पी0 साठे**, ज्यूडिशियल एक्टिविज्मः द इण्डियन एक्सपीरिएंस - वाशिंगटन यूनिवर्सिटी जरनल ऑफ लॉ एण्ड पॉलिसी वॉल्यूम 6, 2001

3. **उपेन्द्र बक्शी**, टेकिंग सफरिंग सीरियसलीः सोशल एक्शन लिटिगेशन इन सुप्रीम कोर्ट ऑफ इण्डिया, इन द जजेज ऑफ ज्यूडिशियल पावर्स 1985

4. **ल्याकर अली**, जस्टिस ज्यूडिशियरी एण्ड ज्यूडिशियल एक्टिविज्म - लीगल व्यूज एण्ड न्यूज, न्यू देहली 1998 पेज 26

5. **रघुल सुधीश**, इज ज्यूडिशियरी रूलिंग इण्डिया? ऑर जस्ट फिलिंग द गैप? - फर्स्ट पास्ट सण्डे 13 अगस्त 2017

6. जी0बी0 रेड्डी, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डिया, द हिन्दू 9/10/2001

7. अर्चा वशि-ठ, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डिया, लीगल ब्लॉक जरनल 2017

8. रश्मि बी0, न्यायिक सक्रियता का अधिकार क्षेत्र पर निबन्ध- (ऐसे इन हिन्दी अ वेब प्लेटफॉर्म)

9. ऐश्वर्या तलवार, एमिटी यूनिवर्सिटीः सेपरेशन ऑफ पॉवर एण्ड ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डिया, एकेडिमिक 13/11/2015

10. प्राची अग्रवाल, सी0एन0एल0यू0 पटना- ज्यूडिशियल एक्टिविज्म एण्ड कॉन्स्टीट्यूशनल चैलेन्जेज इन इण्डिया एकेडमिक 13/11/2014

11. दृ-टि मैगनीज कक्षा कार्यक्रम लेख- ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डिया 11/11/2013

12. नेमी मोहिता ने अपने आर्टीकल ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डियाः ओरिजिन्स, मीनिंग्स, कॉजेज एण्ड कोर्स

13. पीयू-ा पाण्डेय द्वारा न्यायाधीश आर0एस0 सोढी से बातचीत ऑपीनियन न्यूज इन हिन्दी अमर उजाला 02/7/2013

14. न्यायिक सक्रियतावाद विकीपीडिया क्रिएटिव कॉमन्स एट्रीब्यूशन 2/2/2017

15. लिपिका ार्मा, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डियाः मीनिंग एण्ड इम्प्लीकेशन, अकेडमिया

16. ह-र्वर्धन सिंह जुगतवत, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डिया- अ लिटिल डन एण्ड वेस्ट अनडन इन्टरनेशनल जरनल ऑफ लीगल इनसाइट वॉल्यूम-1

17. महाजन नियती, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म फॉर इनवायरमेंट प्रोटेक्शन इन इण्डियाः इन्टरनेशनल रिसर्च जरनल ऑफ सोशल साइंस वॉल्यूम-4(4) 7-14 अप्रैल 2015

18. डॉ0 श्रीगोरी कोसुरी, सोशल एक्टिविज्म एण्ड ज्यूडिशियल एक्टिविज्मः ग्लोबल रिसर्च एनालाइसिस वॉल्यूम -1 सितम्बर 2012 **17**

19. विपिन कुमार, द रोल ऑफ ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन द इम्प्लीमेन्टेशन एण्ड प्रमोशन ऑफ कॉन्स्टीट्यूशनल लॉज एण्ड इन्फ्लूएन्स ऑफ ज्यूडिशियल ओवरएक्टिविज्मः आई0ओ0एस0आर0 जरनल ऑफ ह्यूमेनिटीज एण्ड सोशल साइंस वॉल्यूम 19, फरवरी 2014 पेज 20-25

20. प्रीतम कुमार घो-ा, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म एण्ड पब्लिक इन्टेरेस्ट लिटिगेशन इन इण्डियाः गलगोटियास जरनल ऑफ लीगल स्टडी 2013 वॉल्यूम 1

21. मूल चन्द ार्मा एण्ड जॉर्ज एच0 गडवॉइस, :लॉ स्टूडेन्ट इवॉल्यूट द सुप्रीम कोर्ट- अ केस ऑफ इन्हेन्समेन्ट- जरनल ऑफ द इण्डियन लॉ इन्स्टीट्यूट वॉल्यूम 31, 1989 पेज 1-46

22. **ए0के0 माथुर**, लिमिट ज्यूडिशियल एक्टिविज्म,द इकनॉमिक टाइमृस 2008
23. **मुशर्रफ**, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म एण्ड टू इमरजैन्सी, एक्सप्रैस इण्डिया, 2008
24. **किरण वेदी**, न्यायिक सक्रियता का मतलब विधायिका व कार्यपालिका के क्षेत्र में हस्तक्षेप नहीं माना जाना चाहिये, हिन्दुस्तान टाइमृस 2006
25. **भट्ट, डी0के0**, ज्यूडिशियल एक्टिविज्म थ्रू पब्लिक इण्टरेस्ट लिटिगेशन : द इण्डियन एक्सपीरियन्स ए0आई0आर0 1998 जरनल 120
26. **देशाई, डी0के0**, कॉस्टीट्यूशनल वैल्यूज एण्ड ज्यूडिशियल एक्टिविज्म, जरनल ऑफ बी0सी0आई0 वॉल्यूम 9 (2) 1982 पेज 258-268
27. **गुप्ता, आशा**, ज्यूडिशियल रिव्यू इन द यू0एस0ए0 एण्ड इण्डिया अ कम्परेटिव स्टडी, इण्डियन वार रिव्यू, वॉल्यूम 17 (1) एण्ड (2) 1990 पेज 79-105
28. **बक्सी, उपेन्द्र**, ज्यूडिशियरी एट द क्रॉस रोड्स, जरनल ऑफ द बी0सी0आई0 वॉल्यूम 9 (2) 1982 पेज 231-240

<u>किताबें</u>

1. ुक्ला, बी0एन0 :कांन्सटीट्यूशन ऑफ इण्डिया, 1972
2. जैन, एम0पी0 :कांन्सटीट्यूशन लॉ ऑफ इण्डिया 1970
3. डायसी, ए0वी0 :लॉ ऑफ द कॉन्सटीट्यूशन
4. सीरवई, एच0एम0 :कांन्सटीट्यूशनल लॉ ऑफ इण्डिया
5. बसु, डी0डी :कमेन्ट्री ऑन द कान्सटीटयूशन ऑफ इण्डिया
6. डेविड एम. ओब्रायन :जजेज ऑन जजिंग व्यूज फ्रॉम द बैंच
7. पाण्डेय, जे0एन0 :भारत का संविधान सेन्ट्रल लॉ ऐजेन्सी
8. लोढ़ा, गुमानमल :न्यायिक क्रान्ति के बदलते आयाम, यूनिक ट्रेडर्स जयपुर
9. अग्रवाल, एस0के0 :पब्लिक इण्टरेस्ट लिटिगेशन इन इण्डिया
10. साठे, एस0पी0 :ज्यूडिशियल एक्टिविज्म इन इण्डिया आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, 2003
11. चौधरी व चतुर्वेदी :लॉ ऑफ फण्डामेन्टल राइट्स
12. विजयानन, पी0पी0 :डिटेल ऑफ रिजर्वेशन पॉलिसी एण्ड ज्यूडिशियल एक्टिविज्म, ज्ञान बुक्स, 2005

13. प्रसाद, अनिरूद्ध :विधिशास्त्री के मूल सिद्धान्त, ईस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ

14. कोठारी, सी0आर0 :रिसर्च मैथोलॉजी

15. भाटिया, के0एल0 :ज्यूडिशियल रिव्यू एण्ड ज्यूडिशियल एक्टिविज्म, नई दिल्ली, दीप एण्ड दीप 1997

ृोध छात्र का विवरण :-

1. ृोध संक्षेपिका का ृा-र्क :वर्तमान परिदृश्य में न्यायिक सक्रियता के

विविध आयामः एक तुलनात्मक

अध्ययन

2.	ृोधार्थी का नाम	:लाल सिंह
3.	वि-ाय/संकाय	:विधि/विधि संकाय, आगरा कॉलेज, आगरा
4.	पंजीकरण संख्या	:236/2017/5825
5.	नामांकन संख्या	:9954448
6.	पर्यवेक्षक का नाम	:डॉ0 एस0 के0 दूबे
7.	पद	:एसोसिएट प्रोफेसर, विधि संकाय, आगरा कॉलेज आगरा
8.	ृोध केन्द्र का नाम	:विधि संकाय, आगरा कॉलेज आगरा
9.	कुल पेज	:24
10.	ई–मेल	:संसण्पदही44482/हउंपसण्बवउ
11.	मोबाइल नं0	:9412590893
12.	पत्राचार का पता	:सूर्य नगर नई आबादी, अजीजपुर पोस्ट धनौली, आगरा।